शरीर की भी अपनी बुद्धिमत्ता है लेकिन यह बुद्धिमत्ता प्रज्ञाचक्षु वाली है

बॉडी–विज़डम

प्रश्न : ओशो, आपने अभी कहा कि शरीर अंधा है, यांत्रिक है। लेकिन अन्यत्र आप यह भी कहते हैं कि शरीर की अपनी प्रज्ञा है, बाडी विज़डम है। कृपया इसे स्पष्ट करें। और दूसरी चीज, इस श्लोक में कहा गया है, जीत लिया है अंतःकरण जिसने और त्याग दी है संपूर्ण भोगों की सुख–सामग्री। कृपया इसका भी अर्थ समझाएं।

निश्चय ही, शरीर की अपनी प्रज्ञा है। लेकिन वह प्रज्ञा वैसी है, जैसे अंधे आदमी की होती है। शरीर प्रज्ञाचक्षु है। शरीर की अपनी इंटेलिजेंस है, पर मेकेनिकल इंटेलिजेंस है, यांत्रिक प्रज्ञा है। जैसे, शरीर की प्रज्ञा का, बाडी विज़डम का क्या अर्थ है? शरीर की प्रज्ञा का यह अर्थ है कि आपको हृदय की धड़कन तो नहीं धड़कानी पड़ती, शरीर धड़काता रहता है। अगर आपको धड़कानी पड़े, तो सत्तर साल की उम्र तक मुश्किल से कोई आदमी कभी पहुंचे। जरा चूके, कि गए! एकाध दिन भूल गए, एकाध दिन तो बहुत दूर है, पांच-सात सेकेंड भूल गए, गए!

शरीर हृदय को चलाता रहता है। खून आप नहीं चलाते, शरीर चलाता है। आपको चलाना पड़े तो मुश्किल हो जाए। सच तो यह है कि एक छोटे-से आदमी के शरीर में, एक पांच फीट के शरीर में इतना काम चलता है कि वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर इतना पूरा काम हमें फैक्ट्री में करना पड़े, तो दस वर्ग मील की फैक्ट्री बनानी पड़े। इतना काम आप नहीं चला रहे हैं, शरीर चला रहा है। लेकिन ऑटोमैटिक, यंत्र

की तरह चला रहा है। उसकी अपनी इंटेलिजेंस है। इंटलिजेंस का मतलब है कि उसे भी फिक्र करनी पड़ती है हजार तरह की, लेकिन वह है मेकेनिकल। जैसे आपके हाथ में घाव हो गया। दूसरे दिन मवाद इकट्ठी हो जाती है। यह आपने इकट्ठी नहीं की; यह शरीर ने भेजी है। आपको पता है, मवाद क्यों इकट्ठी हो जाती है! पता भी नहीं होगा कि क्यों इकट्ठी हो जाती है।

जिसे आप मवाद कहते हैं, खून के सफेद कण हैं, व्हाइट पार्टिकल्स हैं। खून में दो तरह के कण हैं, सफेद और लाल। लाल कण कमजोर कण हैं, डेलिकेट हैं। सफेद कण शक्तिशाली कण हैं, मजबूत हैं। शरीर में घाव हो गया; शरीर फौरन सफेद कणों को भेजता है घाव के आस-पास, सेफ्टी मेजर के लिए।

जैसे कि आपके गांव पर हमला हो जाए, तो आप मिलिट्री के दस्ते को खड़ा कर देते हैं गांव के बाहर। सैनिक भेज देते हैं। औरत-बच्चों को हटा लेते हैं फौरन पीछे, कि हटो। हट जाओ। दुकानें अलग कर लो। मिलिट्री के जवानों को खड़ा कर देते हैं। हमला हो गया! जब शरीर पर घाव होता है, तो बाहर से हमला हो गया। शरीर अपने मिलिट्री के जवानों को फौरन वहां भेज देता है। वे सफेद कण जवान हैं उसके। जिसको आप मवाद कहते हैं, वह मवाद नहीं है; वह शरीर के सफेद कण हैं खून के, जिनकी पर्त को वह वहां भेज देता है। उनकी पर्त पूरे घाव को घेर लेती है। उस पर्त को पार करके बाहर के कीटाणु अब शरीर में प्रवेश नहीं कर सकते। उस पर्त में घिरकर भीतर शरीर अपना काम शुरू कर देता है, नई चमड़ी को निर्माण करने का। जब तक चमड़ी निर्मित न हो जाए, तब तक मवाद की पतली पर्त बाहर के

शरीर अपना काम शुरू कर देता है, नई चमड़ी को निर्माण करने का। जब तक चमड़ी निर्मित न हो जाए, तब तक मवाद की पतली पर्त
बाहर के कीटाणुओं को शरीर के भीतर प्रवेश नहीं करने देगी। वे फाइटर्स हैं। लेकिन यह सब है। शरीर की भी अपनी बुद्धिमत्ता है। यह कोई छोटा-मोटा काम नहीं है। लेकिन यह बुद्धिमत्ता है। प्रज्ञाचक्षु वाली, अंधे आदमी वाली।

जिस अर्थ में मैंने कहा है कि शरीर की अपनी प्रज्ञा है, वह और अर्थ है—इस अर्थ में! और अभी जब मैं कह रहा हूं कि शरीर अंधा है, वह इस अर्थ में कि अगर आप शरीर की क्रियाओं के पास मौजूद नहीं हैं, तो शरीर आदतों से चलने लगता है। एक आदमी सिगरेट पी रहा है। अक्सर सिगरेट पीने वाला आदत से पीता है। कब उसका हाथ भीतर चला जाता है खीसे में, कब पाकेट बाहर निकाल लेता है, इसका उसे होश नहीं होता। कब उसके मुंह में सिगरेट लग जाती है, धुआं बाहर-भीतर होने लगता है, इसका उसे होश नहीं होता। यह बिलकुल यंत्रवत चलता है। होश आ जाए, तो धुआं बाहर-भीतर करने की स्टुपिडिटी करने वाला आदमी जरा मुश्किल से मिलेगा। क्योंकि कर क्या रहा है? कर इतना ही रहा है कि धुएं को बाहर ले जा रहा है, भीतर ले जा रहा है। अब धुएं को बाहर-भीतर करना, पैसा खर्च करके खून को जहरीला करना, उम्र को कम करना बेहोशी में ही हो सकता है; होश में नहीं हो सकता। और या फिर आदमी स्युसाइडल हो, आत्मघाती हो, तो हो सकता है। लेकिन आत्मघात भी बेहोशी में ही हो सकता है; होश में नहीं हो सकता। जरा कोशिश करें एक दिन सिगरेट होशपूर्वक पीने की। सिगरेट पीएं, आंख

आत्मघात भी बेहोशी में ही हो सकता है; होश में नहीं हो सकता। जरा कोशिश करें एक दिन सिगरेट होशपूर्वक पीने की। सिगरेट पीएं, आंख
बंद करके मेडिटेट करें धुंए पर—कि यह भीतर गया; यह बाहर गया; यह भीतर गया। थोड़ी देर में लगेगा, कि मैं आदमी हूं कि पागल हूं! यह मैं कर क्या रहा हूं? बहुत मूढ़ता मालूम पड़ेगी, बहुत ईडियॉटिक। लेकिन काफी मूढ़ हैं; इसलिए मूढ़ता पर भी धंधे चलते हैं।

अमेरिका की सीनेट ने पीछे, दो-तीन वर्ष पहले तय किया कि सब सिगरेट पर लाल अक्षरों में, बड़े अक्षरों में लिख दो कि स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद है। दिस इज़ हार्मफुल टु हेल्थ, बड़े अक्षरों में लिख दो।

पहले सिगरेट के मालिकों ने बहुत विरोध किया कि इससे तो बहुत नुकसान हो जाएगा। मुकदमे चलाए। अदालत में ले गए मामले को कि इससे तो बहुत नुकसान हो जाएगा। क्योंकि आदमी अगर हर बार सिगरेट के डिब्बे पर पढ़ेगा कि यह स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद है, तो सिगरेट के धंधे का नुकसान हो जाएगा। लेकिन मनोवैज्ञानिकों ने कहा, घबड़ाओ मत। जो धुएं को बाहर-भीतर कर लेता है, वह लाल स्याही को भी भूल जाएगा।

और यही हुआ। तीन-चार महीने में करोड़ों रुपए का धंधा कम हो गया सिगरेट का; लेकिन फिर वापस अपनी जगह हो गया! जो आदमी धुंए को बाहर-भीतर करने में होश नहीं रख पाता, वह लाल स्याही को कितनी देर तक देखेगा? डब्बे पर लिखा है, लिखा रहे; अब कौन पढ़ता है? उसको कोई नहीं पढ़ता।

आदमी बेहोश है। और जब तक बेहोश है, तब तक शरीर यांत्रिक आदतें पकड़ लेता है। और यांत्रिक आदतें बंधन का कारण बन जाती हैं।

होशपूर्वक आदमी यांत्रिक आदतें नहीं पकड़ता है; पकड़ता ही नहीं यांत्रिक आदतें। होशपूर्वक आदमी अपना हाथ भी नहीं हिलाता व्यर्थ। हाथ भी हिलाता है, तो होशपूर्वक हिलाता द्ध उससे बात कर रहे थे। बात जारी रखी और बेहोशी में—जैसा कि हम सब करते हैं—मक्खी को हाथ से उड़ा दिया। होशपूर्वक नहीं, जतनपूर्वक

एक छोटे-से आदमी के शरीर में, एक पांच फीट के शरीर में इतना काम चलता है कि वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर इतना पूरा काम हमें फैक्ट्री में करना पड़े, तो दस वर्ग मील की फैक्ट्री बनानी पड़े। इतना काम आप नहीं चला रहे हैं, शरीर चला रहा है

है। बुद्ध एक गांव से गुजर रहे हैं। बुद्ध होने से पहले की बात है। एक मक्खी कंधे पर आकर बैठ गई। आनंद साथ में था। बुद्ध उससे बात कर रहे थे। बात जारी रखी और बेहोशी में—जैसा कि हम सब करते हैं—मक्खी को हाथ से उड़ा दिया। होशपूर्वक नहीं, जतनपूर्वक नहीं, कांशसली नहीं; बात जारी रही, धक्का मारा हाथ का और उड़ा दिया। फिर रुक गए, उदास हो गए। आनंद ने पूछा, क्या हुआ? बुद्ध थोड़ी देर खड़े रहे, फिर हाथ ले गए उस जगह, जहां मक्खी बैठी थी कभी, अब नहीं थी। फिर उड़ाया मक्खी को जो कि अब थी ही नहीं। फिर हाथ नीचे लाए। आनंद ने कहा, क्या करते हैं आप? क्या उड़ाते हैं? कंधे पर कुछ नहीं है। बुद्ध ने कहा उड़ाकर देख रहा हूं फिर से, जैसा कि मुझे उड़ाना चाहिए था—होशपूर्वक। उस बार मैंने बेहोशी में मक्खी को उड़ा दिया। अपना ही हाथ बेहोशी में काम करे, तो खतरनाक काम भी कर सकता है। आज मक्खी उड़ाता है, कल किसी की गर्दन दबा सकता है! अगर आज मक्खी को मैंने बिना जतन के उड़ा दिया, विदाउट माइंडफुलनेस—बुद्ध का शब्द है, स्मृतिपूर्वक, विद माइंडफुलनेस—अगर मैंने स्मृतिपूर्वक नहीं उड़ाया मक्खी को, तो कल क्या भरोसा है कि मेरे हाथ किसी की गर्दन न दबा दें! दबा सकते हैं। तो मैं खड़ा होकर उस तरह उड़ा रहा हूं, जैसे कि उड़ाना चाहिए था। और अगली बार स्मरण रखूंगा कि जतनपूर्वक, स्मृतिपूर्वक मक्खी को उड़ाऊं, अन्यथा कर्म बंधन से मुक्ति है।

बेहोश कर्म बंधन है। होशपूर्वक कर्म बंधन से मुक्ति है।

दूसरी बात पूछी है कि कृष्ण कहते हैं, सुख-सामग्री को छोड़कर—स्वयं को जीतकर, सुख-सामग्री को छोड़कर—इसका क्या अर्थ?

सुख-सामग्री को छोड़कर का अर्थ, सामग्री को छोड़कर नहीं। सुख-सामग्री को छोड़कर! सामग्री और सुख-सामग्री में फर्क है। उनसे आप सुख नहीं खींचते अपने भीतर, सिर्फ जरूरत पूरी करते हैं, तो वे सुख-सामग्री नहीं हैं। लेकिन अगर वस्तुएं आवश्यक नहीं हैं, अनावश्यक हैं, और सिर्फ सुख के स्त्रोत बनाते हैं आप उनको...।

जैसे कि एक स्त्री है, सेर भर सोना लटकाए हुए घूम रही है। पागलखाने में होना चाहिए! क्योंकि शरीर पर सेर भर सोना लटकाने की कोई भी जरूरत नहीं है। शरीर की तो कोई जरूरत नहीं है। नुकसान पहुंच रहा है। लेकिन सोने से शरीर की कोई जरूरत पूरी नहीं की जा रही है। सोना सुख-सामग्री है। सुख-सामग्री क्यों है सोना? क्योंकि जिन-जिन की आंखों में वह सोना चमकेगा, उन-उन की आंखें चौंधिया जाएंगी। वे मानेंगे कि हां, कोई है, समबडी। और कुछ मतलब नहीं है। पति भी प्रसन्न है अपनी स्त्री पर सोना लटकवाकर। उसकी पत्नी पर सोना लटका हो, तो बाजार में उसकी क्रेडिट बढ़ जाती है। उसकी पत्नी पर सोना, उसका चलता-फिरता विज्ञापन है, कि यह आदमी भी कुछ है। पुरुष होशियार है। सोना खुद नहीं लादते, पत्नियों पर लदवा दिया है! पहले खुद ही लादते थे; फिर धीरे-धीरे बुद्धिमत्ता आई। समझे कि यह काम तो औरत से लिया जा सकता है। इसके लिए नाहक हम क्यों परेशान हों! पहले लादते थे।

सुख-सामग्री को छोड़कर! सामग्री को छोड़कर, कृष्ण नहीं कह रहे हैं। सामग्री छोड़ी नहीं जा सकती। जीवन के लिए सामग्री की जरूरत है। जितनी जरूरत है, उतनी बिलकुल ठीक है। सबकी जरूरत भी भिन्न है। इसलिए प्रत्येक अपना निर्णय करे कि उसकी क्या जरूरत है। और निर्णय कठिन नहीं है।

कपड़े आपने शरीर को ढांकने के लिए पहने हैं? सर्दी बचाने के लिए पहने हैं? कि किसी की आंखों को तिलमिलाने के लिए पहने हैं? आप खुद पक्की तरह जान सकते हैं। जब आईने के सामने सुबह खड़े हों, तब आपको पक्का पता चल जाएगा कि यह कोट आप किसलिए पहन रहे हैं? यह सर्दी के लिए पहन रहे हैं? तन ढांकने के लिए पहन रहे हैं? कि किसी की आंखों में तिलमिलाहट पैदा करनी है? कि किसी को हीन दिखलाना है? कि इस आशा में पहन रहे हैं? कि आज जरूर छूकर पूछेगा कि किस भाव से लिया है!

सुख-सामग्री, तो होशपूर्ण व्यक्ति जो है, वह छोड़ देता है। सुख छोड़ देता है सामग्री से। ऐसी सामग्री व्यर्थ बोझ है, जो सिर्फ सुख के खयाल से है। और सुख कुछ मिलता नहीं, सिर्फ बोझ ही लगता है। कुछ मिलता नहीं है सुख। कई बार तो इतना बोझ भरता चला जाता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं।

मैं एक बहुत बड़े आदमी के घर में कुछ दिन पहले मेहमान था। तो उनके बैठकखाने में बैठने की जगह भी नहीं है! चलना-फिरना भी मुश्किल है। इतनी सुख-सामग्री भर दी है बैठकखाने में कि बैठकखाने के बाहर खड़े होकर ही उसका सुख लिया जा सकता है, भीतर जाकर नहीं! बेकार हो गया बैठकखाना, बैठकखाना बैठने के लिए है वह बैठने के लायक नहीं रहा है। वह अजायब घर बना लिया है उन्होंने! उसमें चलते-फिरते डर भी रखना पड़ता है कि उनकी कोई मूर्ति न गिर जाए; कहीं कोई धक्का न लग जाए। महंगी चीजें हैं। वह खुद भी जरा सम्हलकर ही गुजरते हैं वहां से। बैठकखाना आराम के लिए है। लेकिन वह गया!

आदमी बेहोश है। और जब तक बेहोश है, तब तक शरीर यांत्रिक आदतें पकड़ लेता है। और यांत्रिक आदतें बंधन का कारण बन जाती हैं। होशपूर्वक आदमी यांत्रिक आदतें नहीं पकड़ता है; पकड़ता ही नहीं यांत्रिक आदतें। होशपूर्वक आदमी अपना हाथ भी नहीं हिलाता व्यर्थ

लेकिन वह बैठकखाना बैठने के लिए बनाया नहीं गया है। वह तो किन्हीं दूसरों की आंखों में भाव पैदा करने के लिए बनाया गया है। और जब दूसरे की आंख में भाव पैदा होता है, तो रस आता है, सुख आता है।

सुख दूसरे की आंख से आता है, बड़े मजे की बात है, भीतर से नहीं आता। कोई आदमी आकर कह देता है कि हां, आपका बंगला तो बहुत सुंदर बना है, तो सुख आता है।

कलकत्ते में मैं एक घर में ठहरता था। जब भी उनके घर जाता था—नया मकान बनाया था, कलकत्ते में सबसे अच्छा मकान था, स्विमिंग पूल था, सब था, बहुत अच्छा था—उसकी बात करते नहीं थकते थे वे! कहीं से बात शुरू करो, मकान

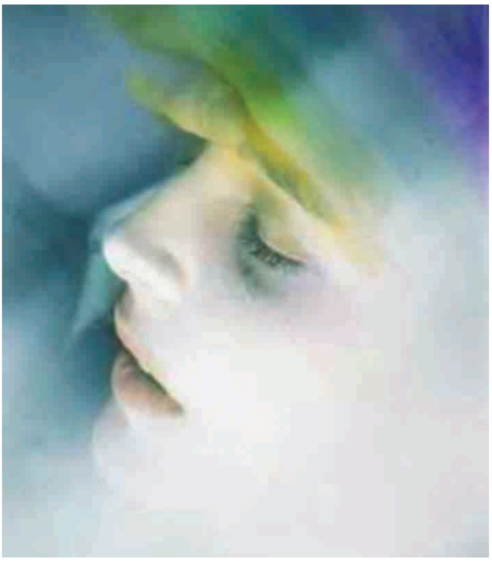

पर पहुंच जाती! दो मिनट से ज्यादा कहीं से भी न चलती। ब्रह्म से शुरू करो, मकान आ जाए! कहीं से शुरू करो। मैंने सब तरफ से बातचीत शुरू करके देख ली। लेकिन कोई उपाय नहीं। दो मिनट से ज्यादा आप चल नहीं सकते, ट्रैक वापस मकान पर आ जाए। मैंने मोक्ष से, ब्रह्म से बात शुरू करके देखी। मैंने उनसे मोक्ष की कुछ बातचीत शुरू की। मिनट डेढ़ मिनट में उन्होंने कहा, एक बात तो बताइए कि मोक्ष में मकान होते हैं कि नहीं? और उन्होंने कहा कि यह मकान बनाया..। बस, शुरू कर देते थे वे कहीं से भी!

फिर दो साल बाद उनके घर मेहमान हुआ, तो उन्होंने मकान की बात न की। मैं जरा चिंतित हुआ। मैंने कई बार मकान की बात छेड़ी, लेकिन कुछ भी करो, कहीं से भी छेड़ो, वे टाल जाते। स्विमिंग पूल की कितनी ही तारीफ करो, वे टाल जाते। वे दूसरी बातें उठा लेते। मैंने पूछा, बात क्या है? गड़बड़ क्या हो गई? पहले मैं नहीं छेड़ता था, आप छेड़ते थे; अब मैं छेड़ता हूं, आप नहीं छेड़ते! उन्होंने कहा, देखते नहीं हैं बगल में? बगल में बड़ा मकान बन गया, उनसे भी बड़ा। अब क्या खाक मकान की बात करनी है! जब तक उससे बड़ा न बना लें, तब तक अब ठीक है। निकलता नहीं हूं बगीचे में, उन्होंने कहा। क्योंकि निकलो बाहर, तो वह मकान दिखाई पड़ता है!

यह जो हमारा चित्त है, कृष्ण कहते हैं, सुख की सामग्री को छोड़कर...।

सामग्री को छोड़ने की बात जरा भी नहीं है। सामग्री अपनी जगह है। पर उससे सुख को खींचना पागलपन है। सामान से सुख नहीं मिलता; ज्यादा से ज्यादा सुविधा मिल सकती है। सामग्री ज्यादा से ज्यादा कनवीनियंस हो सकती है, सुख नहीं। लोग सुविधा को सुख समझकर भूल में पड़ते हैं। सुविधा बिलकुल ठीक है, ओ के। सुख पागलपन है। सुविधा जरूरत हो सकती है। सुख? सुख मिलता ही नहीं है बाहर से, सामग्री से; सुख मिलता है स्वयं से।

इसलिए कृष्ण दूसरी बात कहते हैं, स्वयं को जीतकर! असल में दो तरह की जीत हैं इस जगत में। एक वे लोग हैं, जो वस्तुओं को जीतते रहते हैं। छोटी कार से बड़ी कार जीतते हैं। छोटे मकान से बड़े मकान जीतते हैं। बस, वस्तुओं को जीतते रहते हैं। आखिर में पाते हैं, वस्तुएं तो जीत लीं, खुद को हार गए। मरते वक्त पता चलता है, जो जीता था, वह पड़ा रह गया और हम चले। तब कुछ सामान साथ ले जाना मुश्किल हो जाता है। पंछी जाए अकेला! वह सब जो जीता था, पड़ा रह जाता है।

कुछ वे लोग हैं, जिन्हें बुद्धिमान कहें, जो वस्तुओं को नहीं जीतते। क्योंकि जो जानते हैं, वस्तुएं हम नहीं थे, तब भी थीं; हम नहीं होंगे, तब भी होंगी। और वस्तुओं की जीत असली जीत नहीं ता है। वस्तुओं पर दांव बढ़ता चला जाता है और स्वयं की हार गहरी होती चली जाती है। नजर है, अपनी जीत असली जीत है। स्वयं को जीतते हैं। जो वस्तुओं को जीतता है, वह स्वयं को हारता चला जाता है। वस्तुओं पर दांव बढ़ता चला जाता है और स्वयं की हार गहरी होती चली जाती है। नजर वस्तुओं पर लग जाती है, स्वयं से चूक जाती है। फिर कोई स्वयं को जीतता है। कृष्ण उसकी बात कर रहें हैं कि ऐसा व्यक्ति स्वयं को जीत लेता—आत्म-विजय।

महावीर ने कहा है, तुम सब हार जाओ और स्वयं को जीत लो, तो तुम विजेता हो। और तुम सब जीत लो और स्वयं को हार जाओ, तो तुमसे ज्यादा पराजित और कोई भी नहीं है।

आपको पता हो या न हो, महावीर के लिए जिन जो नाम मिला, वह इसीलिए मिला। जिन का मतलब है, जीत लेने वाला, जिसने जीत लिया स्वयं को। जिन का अर्थ है, जिसने जीत लिया स्वयं को।

जो जिन बन जाता, जो स्वयं को जीत लेता, फिर इस जगत में उसे पाने योग्य कुछ नहीं भी रह जाता। इस जगत में क्या, कहीं भी पाने योग्य कुछ नहीं रह जाता। लोक में, परलोक में, कहीं भी उसे पाने योग्य कुछ नहीं रह जाता। जिसने स्वयं को पाया, उसने सब पा लिया। जिसने स्वयं को खोया, उसने सब खो दिया। बस, स्वयं के जीते जीत है।

ऐसा पुरुष स्वयं को जीतकर सुख की सामग्री के व्यर्थ बोझ से मुक्त हो जाता है। अभिमान से भरता नहीं। कर्म करते हुए अकर्म में जीता है। सब जरूरी करते हुए भी उसके ऊपर कोई रेखा नहीं छूटती। वह जतनपूर्वक चादर को परमात्मा के हाथ में सौंप देता है। उस पर कोई दाग, कोई धब्बा नहीं होता है।

आज सुबह इतना; फिर सांझ हम बात करेंगे। पांच मिनट आप सब रुकेंगे। और जिनमें थोड़ी भी हिम्मत हो, वे भी कीर्तन में भाग लें। पांच मिनट डूबें।

—ओशो

गीता दर्शन भाग—2

प्रवचन नं. 7 से संकलित
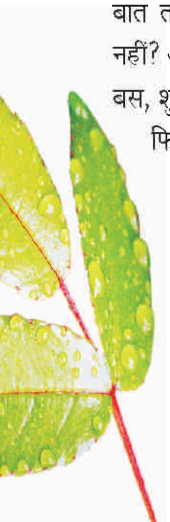
(पूरा प्रवचन टेप पर उपलब्ध है)